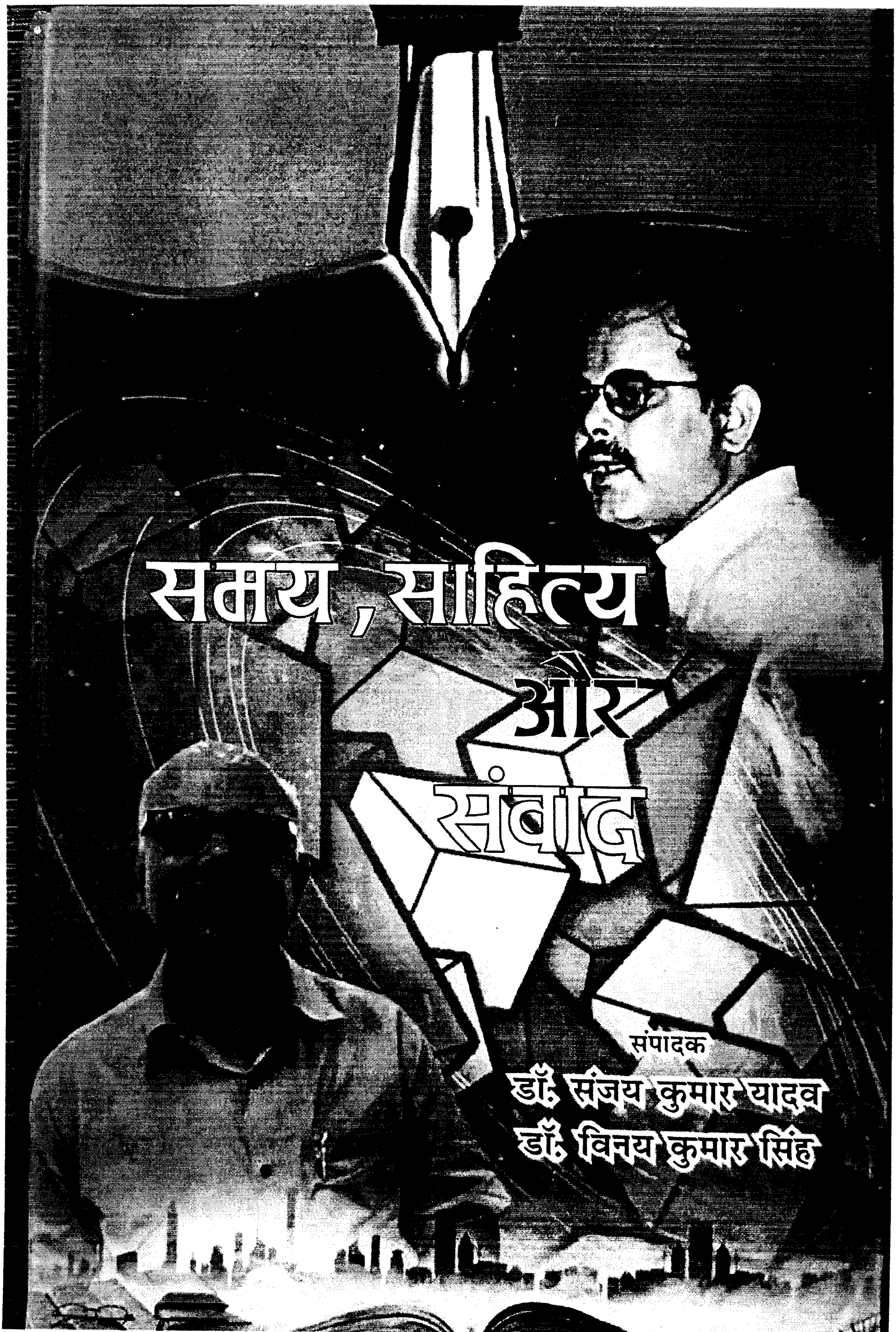
समय, साहित्य
और
संवाद
संपादक
डॉ. संजय कुमार यादव
डॉ. विनय कुमार सिंह

समय, साहित्य और संवाद

संपादक
डॉ. संजय कुमार यादव
डॉ. विनय कुमार सिंह

अभिधा प्रकाशन

परामर्शक-मंडल
प्रो. कल्याण कुमार झा, डॉ. राकेश रंजन, डॉ. सुनील कुमार

संपादक-मंडल
डॉ. हेमा कुमारी, डॉ. भोला प्रसाद यादव, डॉ. ज्ञानेश्वर 'गुंजन', अतुल आजाद

ISBN : 978-93-92342-46-2

प्रथम संस्करण
2022

सर्वाधिकार
लेखकाधीन

प्रकाशक
अभिधा प्रकाशन
रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002
दिल्ली कार्यालय
जी72, गंगा विहार, गोकुलपुरी, दिल्ली-110094

अक्षर-संयोजन
एस. कुमार

आवरण
हिमांशु राज

मुद्रक
बी० के० ऑफसेट, दिल्ली-32

मूल्य
1100/- (ग्यारह सौ रुपये)

Samay, Sahitya aur Samwad
Edited By **Dr. Sanjay Kumar Yadav & Dr. Vinay Kumar Singh**
Rs. 1100.00

अनुक्रम

संपादकीय

शब्द-सारथी की अक्षर-यात्रा/ डॉ. संजय कुमार यादव एवं डॉ. विनय कुमार सिंह/9

संस्मरण

1. श्रम, पुरुषार्थ और प्रतिभा का प्रतिमान : सतीश कुमार राय/ डॉ. परमेश्वर भक्त/13
2. 'पर-उपकार वचन मन काया' के विग्रह : डॉ. सतीश कुमार राय/ डॉ. जंगबहादुर पांडेय 'तारेश'/17
3. डॉ. सतीश कुमार राय का लेखकीय व संपादकीय व्यक्तित्व/ साकेत बिहारी शर्मा 'मंत्र मुदित'/28
4. साहित्य-सागर का अनमोल मोती/डॉ. गोरख प्रसाद मस्ताना/34
5. प्रतिमानों के प्रतिमान डॉ. सतीश कुमार राय 'अनजान'/चतुर्भुज मिश्र/38
6. संवाद का सहज संवेदन और संवेदन का सार्थक सृजन/डॉ. संजय पंकज/42
7. चंपारन का गौरव बढ़ानेवाले विद्वान डॉ. सतीश कुमार राय/ अंजनी कुमार सिन्हा/48
8. वो देखो! रौशन हुआ जाता है रस्ता.../डॉ. रामेश्वर द्विवेदी/51
9. अनजान को जितना मैंने जाना है/प्रो. (डॉ.) सुरेंद्र प्रसाद केसरी/61
10. चंपारन के रत्न : डॉ. सतीश कुमार राय/प्रो. (डॉ.) पुष्पा गुप्ता/64
11. डॉ. सतीश कुमार राय : एक सहज व्यक्तित्व/प्रो. (डॉ.) संत साह/69
12. प्रो. सतीश कुमार राय : सहज व्यक्तित्व के पुरुषार्थी/प्रो. राजीव कुमार झा/72
13. मेरी राय में प्रो. सतीश कुमार राय/डॉ. श्रीकांत सिंह/75
14. एक चुंबकीय व्यक्तित्व/डॉ. मधुसूदन मणि त्रिपाठी/78
15. डॉ. सतीश कुमार राय 'अनजान' से नामचीन तक/डॉ. मृगेंद्र कुमार/81
16. अनजान से अभिज्ञान तक/डॉ. तारकेश्वर उपाध्याय/88
17. मेरे लिए सतीश के होने का मतलब/डॉ. अनिल कुमार राय/92
18. उपलब्धियों के शिखर-पुरुष डॉ. सतीश कुमार राय/डॉ. शैल कुमारी वर्मा/95
19. शीतल झरने के मीठे पानी जैसा व्यक्तित्व : प्रो. सतीश कुमार राय जी!/ डॉ. शकील मोईन/98
20. गुफ्तगू में ही झलकती विद्वत्ता/जफर इमाम/100
21. भाई सतीश : एक दृष्टि/लालबाबू शर्मा/103

22. विरल व्यक्तित्व के धनी डॉ. सतीश कुमार राय 'अनजान'/
डॉ. रामनरेश पंडित रमण/105
23. नमामि वीथिनायकम्!/डॉ. उपेंद्र प्रसाद/108
24. सतीश : मेरा मित्र/मनोज मोहन/113
25. हर दिल अजीज : प्रोफेसर सतीश कुमार राय/डॉ. राजीव कुमार/116
26. सहज और निश्छल साथी : सतीश कुमार राय/अशोक गुप्त/120
27. सहज, सरल और आत्मीय बंधु प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय/
अरविंद कुमार/124
28. जीवेत शरदः शतम्/डॉ. मधु रचना/131
29. कर्मठता और मेधा के प्रतिमान भाई 'अनजान'/डॉ. नागेंद्र सिंह/134
30. भैया, साइकिल चलाना सीख लीजिए न/डॉ. ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी/137
31. प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय 'अनजान' से जुड़े संस्मरण/सुरेश गुप्त/149
32. संघर्ष की प्रतिमूर्ति/अरुण गोपाल/163
33. डॉ. सतीश कुमार राय : एक साहित्यिक गौरव-पुरुष/डॉ. दिवाकर राय/165
34. प्रखर व्यक्तित्व, समर्पित शख्सियत डॉ. सतीश कुमार राय/डॉ. सीमा स्वधा/181
35. प्रोफेसर राय को जैसा मैंने जाना/डॉ. अनिता सिंह/185
36. डॉ. सतीश कुमार राय : मेरी नजरों में/डॉ. विजयिनी/187
37. अभिनव अनजान/डॉ. जगमोहन कुमार/189
38. मेरे प्रेरक, मेरे सर्जक : डॉ. सतीश कुमार राय/डॉ. हेमा कुमारी/193
39. अनमोल स्मृतियाँ/डॉ. चंद्रलता कुमारी/201
40. गुरुवर : एक परिचय/डॉ. राकेश कुमार/205
41. सहज व्यक्तित्व और प्रखर कर्तृत्व के प्रतिमान/डॉ. कुमार अनुभव/208
42. मेरे गुरुदेव डॉ. सतीश कुमार राय/डॉ. राकेश रंजन/212
43. सर के सान्निध्य में : एक संस्मरण/डॉ. हर्षलता सिंह/217
44. हिंदी के बहुआयामी साधक सतीश राय 'अनजान'/डॉ. संदीप कुमार सिंह/220
45. शोध की अभिलाषा से गुरुदेव मिले/डॉ. संजय कुमार सिंह/222
46. गुरुवर डॉ. सतीश कुमार राय के चरणों में समर्पित संस्मरण के दो शब्द/
डॉ. विजय कुमार पांडेय/225
47. अतीत के पन्नों में मेरे गुरुवर डॉ. सतीश कुमार राय/डॉ. रश्मि कुमारी/228
48. मेरे जीवन-पथ का पाथेय/डॉ. प्रकाश कुमार/232
49. समन्वय और सामंजस्य के अद्‌भुत कलाकार डॉ. सतीश कुमार राय/
डॉ. प्रीति मणि/237
50. हिंदी के विशाल छायादार वृक्ष प्रो. सतीश कुमार राय/डॉ. यशवंत कुमार/241

51. मेरे गुरु प्रो. सतीश कुमार राय/डॉ. प्रवेश कुमार पासवान/245
52. हिंदी साहित्य के नवल स्तंभ प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय/
डॉ. राजेश कुमार चंदेल/247
53. आकाशधर्मा गुरु/डॉ. जितेंद्र कुमार/250
54. आकाशधर्मा गुरुवर सतीश कुमार राय/डॉ. भोला प्रसाद यादव/253
55. सहजता, सरलता और सहृदयता के छतनार वटवृक्ष : श्रद्धेय गुरुवर/
डॉ. ज्ञानेश्वर 'गुंजन'/261
56. शोध-मर्मज्ञ प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय/डॉ. चंद्रभान राम/265
57. अभिनंदन-अभिनंदन/कुमारी रोशनी विश्वकर्मा/269
58. कवि सतीश कुमार राय को जितना मैं जानता हूँ/अविनाश कुमार पांडेय/272
59. सहज व्यक्तित्व : डॉ. सतीश कुमार राय/डॉ. गुंजन श्रीवास्तव/276
60. ज्ञान के सागर/डॉ. पूजा/279
61. आँखों देखा सुख/अतुल आजाद/281
62. प्रेरक व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा-निवेदन/रश्मि शर्मा/286
63. मेरे प्रेरक और दिशा-निर्देशक/शारदा सिन्हा/288
64. गुरु-कृपा और मैं/पिंकी कुमारी/290
65. दिशाबोध करानेवाले प्रेरक आचार्य सतीश कुमार राय/सुजाता कुमारी/292
66. आचार्यत्व को धन्य करनेवाले गुरु/गीतांजलि कुमारी/296
67. आदरणीय गुरुवर डॉ. सतीश कुमार राय/रेशमी कुमारी/299
68. मेरे अर्द्धनारीश्वर : मेरी दृष्टि में/प्रभा राय/302
69. मेरे पिता : जैसा मैंने जाना/डॉ. प्रज्ञा सुरभि/305
70. डॉ. सतीश कुमार राय : एक व्यक्तित्व के अनेक आयाम/समीक्षा सुरभि/309
71. 'अनजान' से अध्यक्ष तक/प्रो. त्रिविक्रम नारायण सिंह/318
72. सिद्ध आचार्य की षष्टिपूर्ति/प्रो. कल्याण कुमार झा/333
73. सारस्वत साधना के सिद्ध साधक : सतीश कुमार राय/डॉ. वीरेंद्रनाथ मिश्र/346
74. देखा न कोहकन कोई फ़रहाद के बग़ैर/डॉ. राकेश रंजन/350
75. ओहदेदार होने से अधिक आदमी होने की कला/डॉ. उज्ज्वल आलोक/361
76. शिक्षक, अध्यापक एवं गुरु के रूप में प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय/
डॉ. सुशांत कुमार/367
77. 'हिंदी विभाग एक परिवार है'/डॉ. संध्या पांडेय/372
78. 'अपनी मिट्टी का ऋण अब तक नहीं उतार पाया हूँ!'/डॉ. पुष्पेंद्र कुमार/374
79. कुशल प्रशासक डॉ. सतीश कुमार राय/मनोज कुमार/384
80. प्रेरणादायक गुरु डॉ. सतीश कुमार राय/अमित कुमार कर्ण/386

मूल्यांकन

81. 'अब नहीं मैं गीत गाने जा रहा हूँ' : डॉ. सतीश कुमार राय : एक समग्र मूल्यांकन/ प्रो. (डॉ.) अरुण कुमार/389
82. सतीश कुमार राय 'अनजान' का कवित्व : एक टिप्पणी/प्रो. रवींद्र उपाध्याय/412
83. उपेक्षित जनपदीय रचनाशीलता के प्रतिबद्ध संकलक-उद्धारक व्यक्तित्व/ प्रो. रमेश ऋतंभर/415
84. चंपारन और प्रो. राय : कहियत भिन्न न भिन्न/डॉ. विनय कुमार सिंह/418
85. डॉ. सतीश कुमार राय की संपादन-दृष्टि/डॉ. सुनील कुमार/425
86. डॉ. सतीश कुमार राय की शोध एवं आलोचना-दृष्टि/डॉ. पवन कुमार/448
87. 'दर्द सहने की तो आदत बहुत पुरानी है'/डॉ. पंकज कर्ण/467
88. शोध का प्रतिमान : एकांकीकार भुवनेश्वर का यथार्थबोध/डॉ. अनिता कुमारी/471
89. कवि, शायर डॉ. सतीश कुमार राय/राहुल कुमार/475
90. प्रखर शोध-दृष्टि का प्रतिमान : पत्रकार प्रेमचंद/सपना कुमारी/479
91. डॉ. सतीश कुमार राय की आलोचना-दृष्टि/रितु प्रिया/488
92. समृद्ध साहित्यिक-सांस्कृतिक परंपराओं का आईना/दिलीप कुमार/497
93. गोपाल सिंह 'नेपाली' : एक मूल्यांकन/सोनम कुमारी/501
94. डॉ. सतीश कुमार राय की दृष्टि में 'नेपाली'/प्रशांत प्रसाद/505

साक्षात्कार

95. डॉ. सतीश कुमार राय से एक अंतरंग बातचीत/ डॉ. माधव कुमार/514
96. 'अध्यापन मेरे लिए पेशा ही नहीं, धर्म भी है।'/ डॉ. सतीश कुमार राय से डॉ. अनु की बातचीत/537

कविता

97. साहित्यकार श्री सतीश कुमार राय की साठवीं वर्षगाँठ पर/व्रतराज 'विकल'/542
98. हे ज्ञानवान!/डॉ. विनय कुमार सिंह/545
99. सतीश राय होने का मतलब/डॉ. सतीश कुमार 'साथी'/546
100. गुरुवर की अंतस्-गरिमा/अंजनी अपूर्वा/548
101. डॉ. सोनी की दो कविताएँ/549
102. वीणा द्विवेदी की दो कविताएँ/552
103. अक्षर-देह रजनीगंधा है/डॉ. संजय कुमार यादव/563

जीवन-वृत्त/577
चित्र-वीथिका/593

देखा न कोहकन कोई फ़रहाद के बग़ैर

–डॉ. राकेश रंजन

एक

सन् 2000 की बात है। मैंने अपने शहर के एक साहित्यिक अग्रज, समर्थ समकालीन कवि और अवध बिहारी सिंह महाविद्यालय, लालगंज के हिंदी प्राध्यापक डॉ. प्रणय कुमार से किसी बात पर पूछा था–"बिहार विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अभी कौन-कौन से प्राध्यापक हैं?" जवाब में उन्होंने प्रो. महेंद्र मधुकर, प्रो. प्रमोद कुमार सिंह, प्रो. रेवतीरमण और प्रो. सतीश कुमार राय के नाम प्रमुखता से लिए थे। प्रो. सतीश कुमार राय का नाम लेते हुए उन्होंने कहा था–"उनकी पर्सनालिटी बहुत डायनैमिक और डैशिंग है! कभी मुजफ्फरपुर जाइए तो उनसे जरूर मिलिए। आपको अच्छा लगेगा।" सुनकर मैंने मन-ही-मन आह भरी थी, क्योंकि मुजफ्फरपुर मुझे नहीं जाना था। कभी नहीं जाना था!

क्यों नहीं जाना था?

दो

काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर करने के बाद मैं प्रो. अवधेश प्रधान के निर्देशन में 'निराला का परवर्ती काव्य-विकास' विषय पर शोधकार्य हेतु पंजीकृत हुआ। यह सन् 2000 की बात है। दुर्योग से इसी साल मेरी माँ बीमार हो गईं और बीमारी ऐसी कि उन्हें छोड़ना मेरे लिए मुश्किल हो गया। उन्हें 'ऑस्टियोपोरोसिस' हुआ था। इस बीमारी में हड्डियाँ कमजोर और भुरभुरी हो जाती हैं और जरा-सा भी झटका लगने पर टूट जाती हैं। माँ शिक्षिका थीं। उन्हें स्कूल जाना ही था। ऑटो, जीप, मिनी बस आदि से उनका आना-जाना होता था। कभी किसी बाइकवाले ने धक्का मार दिया, कभी किसी चौपहिये वाहन ने चोट लगा दी। इस कारण से एक ही साल में उनके दोनों हाथ और दोनों पाँव बारी-बारी से टूट गए। इसलिए मुझे लौटना पड़ा। सुबह उन्हें स्कूल ले जाता और छुट्टी के समय जाकर ले आता। हम साहित्य में जिन मूल्यों की बात करते हैं, वे सिर्फ

किताबी नहीं होते। अगर जीवन में उन मूल्यों का उपयोग नहीं है, तो फिर उनका क्या मोल है? अगले दो-तीन वर्षों में माँ को तीन-चार बार जॉन्डिस हुआ, जो आगे चलकर 'लिवर सिरोसिस' में तब्दील हो गया। इसके बाद की माँ की संघर्ष-कथा दु:खांतक है, जिसका उल्लेख करना यहाँ न तो उपयुक्त है और न ही अभीष्ट। अभीष्ट यह बतलाना है कि इन्हीं सारी संघर्षपूर्ण और तकलीफदेह परिस्थितियों में एक दिन मेरी भेंट प्रकाशजी से हुई; और वह भेंट–वह एक दिन की भेंट–मेरे तमाम दिनों के लिए एक अच्छे, भरोसेमंद, अंतरंग और हर सुख-दुख में साथ निभानेवाले दोस्त की 'भेंट' साबित हुई।

प्रकाशजी ने बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के हिंदी विभाग से अच्छे अंकों के साथ स्नातकोत्तर की उपाधि हासिल की थी और उस वक्त वे वहीं से हिंदी पत्रकारिता और जनसंचार में डिप्लोमा कर रहे थे। उसी से संबंधित उन्हें एक लघु शोध-प्रबंध लिखना था, जिसका विषय था–'वैशाली जिले की पत्रकारिता : एक सर्वेक्षण'। कहीं से उन्हें पता चला था कि मैं साहित्य में रुचि रखता हूँ और उनके शोधकार्य में सहायक हो सकता हूँ। सो, सन् 2004 की मई की एक चिलचिलाती हुई दोपहर में वे मेरे घर आए और सदा के लिए हमारे दिल में घर कर गए। हम लगभग रोज मिलने लगे और एक-दूसरे के मामलों और सरोकारों में रुचि लेने लगे। उसी दौरान एक दिन उन्होंने कहा–"आप पीएचडी कर लीजिए।" मैं चुप रहा। क्या कहता? यह रास्ता मैं बनारस में छोड़ आया था और सोच लिया था कि जो छोड़ दिया सो छोड़ दिया। फिर उस तरफ नहीं लौटना। अब हाजीपुर में ही एकांत रामभजन होगा। घर-परिवार, माँ का स्वास्थ्य, साहित्य-सेवा, कविता–अब यही मेरी प्राथमिकता है। अब कपास नहीं ओटना, बस हरिभजन करना है। लेकिन प्रकाशजी कहाँ मानने वाले! दूसरों की भलाई में माथा खपाने की सहज प्रतिभा के लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार भी दिया जाए तो कम होगा। हर कुछ दिनों के अंतराल पर वे टोकते–"पीएचडी कर लीजिए।" और हर बार मैं उनकी ओर देखता और चुप रह जाता, कुछ भी न कहता–"कुछ भी न कहा, न अहो, न अहा।"

2009 में प्रकाशन संस्थान, दिल्ली से मेरा दूसरा कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ–'चाँद में अटकी पतंग'। प्रकाशजी की प्रेरणा से, अपने प्रण को शिथिल करते हुए, मैंने तय किया कि मुजफ्फरपुर जाकर कुछ लोगों को

इसकी प्रतियाँ भेंट करूँगा। प्रो. नंदकिशोर नंदन, प्रो. रेवतीरमण, डॉ. पूनम सिंह, डॉ. रश्मि रेखा आदि साहित्यिकों को मैं जानता था। पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनाएँ पढ़ता रहता था, पर नंदनजी के सिवा इनमें से किसी से साक्षात् कभी मिला नहीं था। संग्रह भेंट करने के बहाने इन सबसे मिलने की सहज उत्सुकता थी। हाजीपुर के साहित्यिक आयोजनों में जब भी प्रणयजी से मुलाकात होती थी, मुजफ्फरपुर की साहित्यिक और शैक्षिक गतिविधियों की बात छिड़ने पर वे उक्त साहित्यिकों के साथ प्रो. सतीश कुमार राय का उल्लेख आवश्यक रूप से और बड़े उत्साह के साथ करते थे। प्रकाशजी भी जब भी मिलते, सतीश बाबू की चर्चा जरूर करते। उनका बोलना, उनका चलना, उनकी उदारता, उनकी फटकार, उनके शौक, उनके कंधों तक झूलते-लहराते बाल–इन सबकी चर्चा करते और मेरी आँखों में किसी पौराणिक योद्धा की छवि उभरती। मुजफ्फरपुर जाने के पीछे उनसे मिलने की बलवती उत्कंठा थी।

मुजफ्फरपुर मैं 1990 के बाद नहीं गया था। लंगट सिंह महाविद्यालय से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मैंने प्रण किया था कि इस शहर में फिर नहीं लौटूँगा। 1988 से 1990 तक उस शहर में मैं दो साल रहा–किसी गुमनाम चूहे की तरह! मुझे वहाँ के अधिकतर लोगों और सीनियर्स की आँखों में एक अजीब-सा रोब दिखाई देता था और उनके हाव-भाव में एक हिंसक दबंगई। शहर वही अच्छा, जो किसी अपरिचित आगंतुक अनाथ के माथ पर हाथ रखकर और पीठ थपथपाकर कहे कि डरो मत! हम तुम्हारे साथ हैं! किसी सहयोग की जरूरत हो तो बेहिचक पुकार लेना! दुर्योग से उस शहर में मेरा अनुभव इससे भिन्न रहा था। संभव है, मेरे इस अनुभव के पीछे की वजहों में कुछ मेरी निजी सीमाएँ भी रही हों या मेरा वयगत कच्चापन भी रहा हो, लेकिन आज भी जब मैं उन दिनों को याद करता हूँ, तो मेरी आँखों में उस शहर का ऐंठता-ललकारता बदन और उसकी आँखों का रोब उभरता है। इसे मेरा दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि उस वक्त अपने संकोच के कारण मैं उस शहर के भले लोगों तक नहीं पहुँच पाया और अना के जकड़े, अकड़े हुए लोग नि:संकोच मुझसे अक्सर टकराते रहे।

मुजफ्फरपुर छोड़ने के करीब उन्नीस वर्षों के बाद, 2009 के दिसंबर में, प्रकाशजी के साथ मैं पुन: वहाँ गया। यह यात्रा मेरे लिए अत्यंत

सुखद और उत्साहजनक रही। मुजफ्फरपुर के स्नेही साहित्यिकों से मिलकर मेरे मन पर जमी हुई इतने सालों की धूल साफ हुई और मेरा आत्मिक विरेचन हुआ। मुझे बहुत स्नेह मिला, ढेर सारी शुभकामनाएँ मिलीं। रेवतीजी, पूनम सिंह मैम, रश्मि रेखाजी—मेरे पास इन सबसे जुड़ी अनेक सुंदर स्मृतियाँ हैं। लेकिन अभी मैं स्वयं को विषय पर केंद्रित करते हुए सिर्फ सतीश बाबू से संबंधित अपनी स्मृतियों को साझा करूँगा।

सतीश बाबू बेहद गर्मजोशी के साथ मुझसे मिले। उनके हर्षदीप्त मुखमंडल और स्नेहसिक्त व्यवहार में ऐसा दुर्निवार आकर्षण था कि उस पहली ही मुलाकात में मेरे मन के तार उनसे जुड़ गए। व्यक्तित्व की ऐसी तेजस्विता, भाषा की ऐसी प्रखरता और व्यवहार की ऐसी आत्मीयता मैंने कम लोगों में देखी है। उन्होंने मुझे सम्मानपूर्वक बिठाया, कुशल-क्षेम पूछा, जोर देकर नाश्ता-पानी कराया, चाय पिलाई। फिर हाजीपुर के नए-पुराने साहित्यकारों का हालचाल लिया। बातचीत के क्रम में वे पटना, बनारस, इलाहाबाद, कोलकाता, दिल्ली आदि अनेक शहरों के लेखकों की सृजन-सक्रियताओं की चर्चा करते रहे। मैं यह देखकर विस्मित हुआ कि वे हिंदी लेखकों की नई से नई लेखन-गतिविधियों की जानकारी रखते हैं। मेरे जैसे नए कवियश:प्रार्थी के लिए यह प्रसन्नता की बात थी कि वे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से मेरी भी रचनाओं से परिचित थे। वे काफी देर तक हमसे बातचीत करते रहे। बातचीत के दौरान, प्रसंगवश, प्रकाशजी ने उन्हें बताया कि मैंने अपना शोधकार्य—अपना कैरियर—बीच में ही छोड़ दिया है और फिलहाल एक स्कूल में पढ़ा रहा हूँ। जैसे ही यह प्रसंग छिड़ा, मैंने उनके चेहरे के हर्ष और उत्साह को व्यग्रता में बदलते हुए देखा। इसके बाद जब तक हम वहाँ बैठे रहे, वे बार-बार मेरे अधूरे अकादमिक जीवन को लेकर चिंता जाहिर करते रहे।

इस मुलाकात के दौरान उनके व्यक्तित्व की एक और खास बात जो मैंने देखी, वह यह कि उनमें असीम धैर्य है। सच्चे अर्थों में—असीम! कितने ही लोग कितनी ही समस्याएँ लेकर कितनी ही उम्मीद के साथ उनके पास आते हैं! वे किसी को निराश नहीं करते। कितनी भी व्यस्तता हो, वे किसी को टालकर नहीं लौटाते। सबको समान भाव से सम्मानपूर्वक बिठाते हैं, सबसे बात करते हैं, सबकी समस्याएँ सुनते हैं और उनके समाधान के लिए हर संभव प्रयास करते हैं। यही कारण है कि उनसे जो एक बार जुड़ता

है, वह कभी उनसे अलग नहीं हो पाता। ऐसे उदार-हृदय, लोक-धर्मी और मनुष्य-प्रेमी व्यक्ति आज के आत्मकेंद्रित, व्यक्तिवादी और स्वार्थसाधक युग में किसी वरदान से कम नहीं हैं। कितने फोन, कितने कागजात, कितने लोग, कितनी अपेक्षाएँ, कितने दायित्व, कितनी चुनौतियाँ, कितनी आपत्तियाँ, कितने आभार, कितने जलसे, कितनी जद्दोजहद–एक दिन में! और यह व्यक्ति सबको सहज भाव से, सतत रूप से सँभालता हुआ! जीवन की उत्ताल तरंगों पर, छाती खोले, सबको आगे ले जाने को प्रतिबद्ध, अपनी दोनों भुजाएँ लगातार पटकता हुआ! यह एक दिन की कहानी सतीश बाबू के प्रत्येक दिन की कहानी है!

उस दिन उनसे मिलकर निकलते समय मैंने उनके पाँव छुए, तो उन्होंने पहले 'खुश रहिए' कहा, फिर कहा–"पीएचडी कर लीजिए। आपका नेट है। उसके आधार पर पंजीयन हो जाएगा। मैं रेवतीजी से बात कर लूँगा। वे समर्थ आलोचक हैं, कवि-हृदय हैं, आपका उनके साथ करना सही रहेगा।" उनके व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि उनकी इस सलाह को मैंने आदेश के रूप में ग्रहण किया।

एक दुर्योग आपके जीवन को दुर्गति के गर्त में धकेल सकता है। इसके विपरीत, एक सुयोग आपके जीवन को सार्थक दिशा प्रदान कर सकता है। सतीश बाबू से मिलने का वह सुयोग ऐसा ही सुयोग था, जिसने मेरे जीवन के एक सोए हुए सपने को झकझोर दिया। और उन्हीं सुयोग-क्षणों में, मेरे भीतर एक ऐसा भाव उत्पन्न हुआ, जिसमें सतीश बाबू मेरे लिए सदा के लिए 'सर' और 'गुरुवर' हो गए। यद्यपि उन दिनों माँ अपनी बीमारी के सबसे कठिन दौर से गुजर रही थीं, इसलिए तत्काल शोध में पंजीयन करा पाना संभव न हो सका। माँ हमेशा से चाहती थीं कि मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करूँ और समाज को कुछ दे पाऊँ। उन्हीं के कारण मैं बचपन में साहित्य की ओर उन्मुख हुआ था और उन्हीं की जिद से उच्च शिक्षा हेतु काशी हिंदू विश्वविद्यालय गया था। उन्हें अपने आखिरी समय में भी इस बात की कसक रही कि मैंने उनके लिए भावुक होकर अपना शोधकार्य छोड़ दिया। इस बात के लिए वे अपनी आखिरी साँस तक मुझ पर अपनी निराशा और नाराजगी जाहिर करती रहीं। लेकिन मेरे सामने जो 'सच' था, उसे नजरअंदाज कर 'सपने' की तरफ जाना, इस निर्णय को आप सही समझें या गलत, मेरे लिए संभव न हो सका।

सन् 2012 में, जब माँ 'चरित पूर्ण कर गई चली', मैं नए सिरे से शोधकार्य हेतु सक्रिय हुआ। संयोग कुछ ऐसा बना कि मेरा पंजीयन सतीश बाबू के ही शोध-निर्देशन में हुआ। मेरे शोध का विषय था–'नंदकिशोर नवल की आलोचना-दृष्टि का विकास : एक अध्ययन'। यह विषय सतीश बाबू ने ही सुझाया था, जो मेरे लिए सर्वथा उपयुक्त था। कारण यह कि करीब सत्तरह वर्षों से मैं नवलजी के सघन सान्निध्य में था। वे मेरे गुरु ही नहीं, अभिभावक भी थे। 1995 में जब उनसे पहली बार मिला था, तबसे निरंतर वे मेरे जीवन का अभिन्न हिस्सा और मेरी सृजन-सक्रियता की मुख्य प्रेरणा थे। उनके द्वारा संपादित त्रैमासिक पत्रिका 'कसौटी' में संपादन-सहयोग करते हुए मैंने भाषा की वर्तनी और एकरूपता सहित कई बारीकियाँ उनसे सीखी थीं। उनका घोर अध्यवसाय, अथक लेखन-परिश्रम, शोध-प्रवृत्ति, यश-धन और मान-पुरस्कार के लोभ-लाभ से परे रहकर साहित्य को साधना की वस्तु समझना, जिम्मेदारी और ईमानदारी–उनके ये गुण मुझे रोशनी दिखाते थे। फलत: नवलजी पर शोध करने के लिए, उनकी आलोचना-दृष्टि के विकास की प्रक्रिया और उसकी परिणतियों को समझने के लिए मैं सहर्ष तैयार था।

लेकिन जैसा कि अधिकांश शोधार्थी करते हैं, पंजीयन कराने के बाद कई महीनों तक मैंने अपने शोधकार्य में कोई खास प्रगति नहीं की और लगभग दो साल बिता दिए। यह जरूर था कि इस दौरान मैं शोध-संबंधी अध्ययन कमोबेश करता रहा था, लेकिन जहाँ तक शोध-लेखन की बात थी, तो 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।' ऐसी ही 'जड़त्व की अवस्था' में एक दिन सतीश बाबू का फोन आया। 16 मई, 2014 को करीब पाँच बजे। मैं स्कूल से लौटा ही था। खुश था। कल से गर्मी की छुट्टियाँ शुरू हो रही थीं और कल ही परिवार के साथ नैनीताल के लिए निकलना था। अचानक मोबाइल फोन बजा तो मैंने फोन उठाकर अभिवादन किया।

"क्या हाल-चाल है?" सर का स्वाभाविक प्रश्न था।

"ठीक है, सर! आपका आशीर्वाद है!" मेरा सहज उत्तर था।

"हूँऽ! ठीऽक है!" इसके बाद उनका स्वर जरा गंभीर हुआ–"और क्या चल रहा है?"

इसे सहज प्रश्न समझकर मैंने उत्फुल्ल होकर कहा–"सब अच्छा

चल रहा है, सर! गर्मी छुट्टी हो गई है! कल नैनीताल जा रहे हैं!"

मेरा इतना कहना था कि सर ने कड़कते स्वर में फटकार लगाई– "खबरदार! टिकट कैंसिल कीजिए और बैठकर एक महीने के अंदर-अंदर प्रबंध पूरा कीजिए। वैकेंसी आ रही है।"

मैं भौचक! मानो अरमानों पर सहसा वज्रपात हो गया हो! मेरी स्थिति 'उद्धव-शतक' के उद्धव जैसी थी–'भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।' पर अगले ही कुछ पलों में, जब मैं सहज और शांतचित्त हुआ, मुझे यह महसूस करते देर न लगी कि इस फटकार में मेरे प्रति कितनी गहरी ममता, सदिच्छा और शुभकामना छिपी है! परिणामतः मैंने सर की आज्ञा को मानकर टिकट कैंसिल कराए और अगले दिन से प्रबंध-लेखन में घुटना मोड़कर जुट गया।

करीब चालीस दिनों बाद मैंने सभी जरूरी प्रक्रियाओं को पूरा कर अपना शोध-प्रबंध जमा कर दिया। 17 अक्टूबर, 2014 को विभाग में मेरी खुली मौखिकी हुई। बाह्य परीक्षक के रूप में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से प्रो. अवधेश प्रधान पधारे थे। यह भी एक अद्‌भुत संयोग था! नियति ने मेरे शोधकार्य को किसी न किसी रूप में उनसे जोड़े रखा। मैंने उन्हें शोध-निर्देशक के रूप में खो दिया था, पर शोध-परीक्षक के रूप में पा लिया। मेरे प्रति उनका वत्सल भाव, उनका पुत्रवत् स्नेह इस तरह मेरे जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में फलित हुआ। इस पूरे अभियान में सतीश बाबू की मुख्य सक्रियता रही। वे मेरे लिए हर कदम पर मुझसे एक कदम आगे रहे।

इस प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि मुझे शोधोपाधि प्राप्त होने से सवा महीने पहले ही, 14 सितंबर को, बिहार लोक सेवा आयोग ने सहायक प्राचार्य के पद पर नियुक्ति हेतु विज्ञापन निकाल दिया था। आवेदन करने की अंतिम तिथि 20 नवंबर थी (हालाँकि उसे बाद में 5 जनवरी, 2015 तक बढ़ा दिया गया था)। मैंने ससमय आवेदन कर दिया। मेरा साक्षात्कार अच्छा हुआ, फलतः चयनित हुआ। दिलचस्प संयोग यह भी रहा कि मेरा चयन बिहार के नौ अन्य विश्वविद्यालयों में से किसी के लिए नहीं, बल्कि इच्छित बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय के लिए हुआ। इस पूरी कथा का चरमोत्कर्ष यह रहा कि मेरी नियुक्ति विश्वविद्यालय हिंदी विभाग में हुई, जहाँ आज मैं गुरुवर का कनिष्ठ

सहकर्मी हूँ और उनके अध्यक्षीय निर्देशन में विभागीय शैक्षणिक, साहित्यिक और शोधात्मक गतिविधियों में योगदान करने की कोशिश कर रहा हूँ। और, इस कथा का सार यह है कि जैसे कुएँ में डूबे डोल को काँटे से बाहर निकालते हैं, वैसे ही उन्होंने अपने असीसते कठोर हाथों से मेरे अकादमिक जीवन का उद्धार किया।

मैं हिंदी प्रदेश के कई विश्वविद्यालयों के हिंदी विभागों को जानता हूँ, जहाँ अहंकार या आपसी खुन्नस के मारे शिक्षक एक-दूसरे को अपमानित और कलंकित करने के प्रयास और षड्यंत्र करते रहते हैं; और इस प्रकार अपने विभागों के माहौल को प्रेमिल के बदले द्वेषात्मक और सर्जनात्मक के बदले ध्वंसात्मक बनाए रखते हैं। हिंदी भाषा, साहित्य और शोध में 'इतिहास' रचनेवाले विभाग भी ऐसे शिक्षकों के कारण 'परिहास' की वस्तु हो रहे हैं। इसके विपरीत, मेरे लिए यह बड़े सुख की बात है और इस बात का मेरे लिए बड़ा मूल्य है कि हमारा विभाग एक परिवार है। वरिष्ठ वत्सल शिक्षकों प्रो. त्रिविक्रम नारायण सिंह, प्रो. कल्याण कुमार झा, डॉ. वीरेंद्रनाथ मिश्र तथा कनिष्ठ स्नेही सहकर्मियों डॉ. उज्ज्वल आलोक, डॉ. सुशांत कुमार, डॉ. संध्या पांडेय और डॉ. पुष्पेंद्र कुमार तथा इन सबको एक माला में पिरोनेवाले 'डायनैमिक और डैशिंग' अध्यक्ष प्रो. सतीश कुमार राय के कारण यहाँ का परिवेश सुंदर, स्वस्थ, सानंद, सकारात्मक, सहयोगात्मक, सक्रिय और सर्जनात्मक है। मैं हर पल इस परिवेश की सलामती की दुआ करता हूँ और रोज, मन ही मन, विभाग के ललाट पर एक काला टीका लगा देता हूँ!

1990 में लंगट सिंह महाविद्यालय से इंटरमीडिएट करने के बाद उसके विशाल कलात्मक मुख्य द्वार से निकलते हुए सोलह साल के एक चुप्पे, अंतर्मुखी और अजनबियों के बीच किंचित् भयभीत रहनेवाले लड़के ने प्रण किया था कि वह फिर कभी यहाँ लौटकर नहीं आएगा। उसे क्या मालूम था कि एक दिन उसी से दो कदम पर उसके कर्तव्य का प्रांगण और मान का मंदिर होगा!

तीन

सतीश बाबू का प्रेमपात्र होना सहज नहीं है। इसके लिए कठिन परीक्षाओं से गुजरना होता है। कवि बोधा के शब्दों में कहें, तो "यह प्रेम

को पंथ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है।" और, शायर जिगर के हवाले से कहें, तो "इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।" उनका प्रेम फूलों-सा मधुर, कोमल और सहसा अपनी सुगंध से किसी को भी आकर्षित कर लेनेवाला है, वहीं उनकी नाराजगी आपकी जरा-सी असावधानी पर आपको काँटे की तरह चुभ सकती है और कई बार तो आप पर बम की तरह फट सकती है। अगर आपमें उनकी नाराजगी झेलने की ताकत नहीं है, तो आप उनका प्रेमपात्र होने के सर्वथा अयोग्य हैं। वे विद्यार्थियों का खयाल ही नहीं रखते, उनकी खबर भी लेते हैं। उनका प्रेम नीरव-नीरस आकाश में खंड-खंड बिखरे बेरंग बादलों-सा नहीं है। वह आषाढ़ के घुमड़ते घने उन मेघों की तरह है, जो बरसता भी है और ठनकता भी है।

हालाँकि जब वे किसी पर क्रुद्ध होते हैं, मुझे उनके स्वास्थ्य को लेकर चिंता होती है। चिंता तब भी होती है, जब कभी उन्हें मिठाई खाते देखता हूँ। मधुमेह के मरीज को इन दोनों चीजों के पास नहीं फटकना चाहिए। उनका फटता हुआ क्रोध और उनकी प्लेट में परोसी हुई मिठाई—दोनों मुझे किसी बम से कम नहीं लगते। दोनों उनके लिए नुकसानदेह हैं—लेकिन हैं तो हैं! ध्यान दिलाने पर बड़ी सफाई से 'नेपाली' की ये पंक्तियाँ सुनाकर 'बुद्धिवाद' से 'नियतिवाद' की तरफ मुड़ जाते हैं—"कभी आएगी ऐसी घड़ी/बंद हो जाएगा संगीत/लगेगी ऐसी गहरी नींद, बीन पर सो जाऊँगा मौन।" मेरे एक मामाजी, जो मधुमेह के मरीज हैं, मिठाई खाने के लिए ऐसे ही तर्क देकर हमें भरमाने की, 'फॉल्स रूट' में फँसाने की कोशिश करते हैं। सर भी ऐसा करते हैं, यह मैं नहीं कह रहा। यह कह रहा कि मेरे मामाजी ऐसा करते हैं। खैर! इस प्रसंग को यहीं छोड़ते हैं, क्योंकि इसे लिखते हुए मेरे कानों में लगातार उनकी आगाह करती आवाज गूँज रही है—"आप मुझसे कम डँटाए हैं!"

सतीश बाबू अधीती प्राध्यापक और प्रखर वक्ता हैं। मैंने उन्हें कक्षाओं में पढ़ाते देखा है, मंचों पर बोलते सुना है। इतनी सूचनाएँ, इतने संदर्भ, इतने उद्धरण, इतने संस्मरण स्वाभाविक रूप से उनके वक्तव्यों में आते हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। कोई इस तरह, इतने प्रभावी और समृद्ध ढंग से कैसे बोल सकता है! जाहिर है, उनकी यह क्षमता उनके व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता है। उनके वक्तव्यों में तमाम बातें अत्यंत सहज, सटीक, सुचिंतित, सारगर्भित, सर्जनात्मक और सिलसिलेवार ढंग से

आती हैं। मंच पर उनकी उपस्थिति इस शेर की याद दिलाती है—"वो आए बज़्म में इतना तो मीर[1] ने देखा/फिर इस के बा'द चराग़ों में रौशनी न रही।" और, उनका वक्तव्य सुनकर बशीर बद्र का यह शेर याद आता है—"ख़ुदा की उसके गले में अजीब क़ुदरत है/वो बोलता है तो इक रौशनी सी होती है।"

एक शिक्षक के रूप में सतीश बाबू का समर्पण दुर्लभ किस्म का है, लेकिन इस रूप में स्वयं को सार्थक करने में उन्हें अपने सर्जनात्मक सपनों को स्वाहा करना पड़ा है। कभी वे मंच के सफल अभिनेता थे; एक उभरते कवि और नाटककार के रूप में उनकी ख्याति सबल से सबलतर होती जा रही थी; साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उनकी सक्रियता को लोग आज भी याद करते हैं; लेकिन एक शिक्षक के रूप में उन्होंने 'स्व' को 'पर' में विलीन कर दिया। वे अपने विद्यार्थियों से निरंतर इसी दायित्वबोध के साथ संवाद करते रहे कि "शिक्षा की सामाजिक भूमिका होती है और इस भूमिका में स्वयं को विसर्जित कर देना ही एक शिक्षक की सार्थकता है।" विद्यार्थियों की समृद्धि और सफलता को अपना परम ध्येय माननेवाले सतीश बाबू की भावना प्रसिद्ध शायर इकबाल अशहर की 'वसीयत' शीर्षक नज़्म में पूरी तरह समाहित है, जिसकी आखिरी पंक्ति वे एक पल नहीं भूलते—"इसी में जीत पोशीदा है मेरी/मैं तुम से हार जाना चाहता हूँ।" विद्यार्थियों के लिए 'कोहकन' की तरह अथक श्रमलीन ऐसा 'फ़रहाद' मैंने तो नहीं देखा :

देखा न कोहकन कोई फ़रहाद के बग़ैर
आता नहीं है फ़न कोई उस्ताद के बग़ैर

इस विश्वविद्यालय में काम करते हुए उन्हें करीब तीस साल हुए। इस दौरान उन्होंने अपनी शैक्षणिक भूमिकाओं के साथ अनेक महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों को भी सँभाला और अपने दायित्वों का सुंदर निर्वहण

1. इस शेर के रचनाकार को लेकर विवाद है। कुछ उर्दूदाँ इसे मीर का न मानकर महाराज बहादुर वर्मा 'बर्क़' का मानते हैं, तो कुछ अल्ताफुर्रहमान फ़िक्र यज़दानी का। इसलिए कहीं-कहीं इस शेर में 'मीर' की जगह 'बर्क़' मिलता है, तो कहीं-कहीं 'फ़िक्र'।

किया। यद्यपि इस दौरान उन्हें विरोधों और आरोपों का भी सामना करना पड़ा; आलोचनाएँ भी झेलनी पड़ीं। लेकिन जहाँ तक आरोपों की बात है, इस मामले में वे नामवरजी के इस विचार के समर्थक हैं कि "आरोप ओढ़ने की नहीं, बिछाने की चीज है–वह चादर नहीं, दरी है। ठाठ से उस पर बैठिए और अचल रहिए।" और जहाँ तक आलोचनाओं का प्रश्न है, अपने सबसे बड़े, सबसे निर्मम आलोचक वे स्वयं हैं।

सर के बारे में और भी कई तथ्य, कई प्रसंग और संस्मरण ध्यान में आ रहे हैं, लेकिन एक अंतिम बात कहकर मैं इस आलेख का समापन कर रहा हूँ। सर के पिता श्री दामोदर प्रसाद राय स्वयं एक कुशल, समर्थ और प्रगतिकामी कवि थे। वे 'अनभिज्ञ' उपनाम से लिखते थे और 'छूटी हुई पगडंडियाँ' नाम से उनका एक कविता-संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। उनकी ये काव्य-पंक्तियाँ किसी समर्थ कवि और उसकी कविता के सामर्थ्य का बयान करती हैं :

तेरी कविता में वह बल जो
अवनी औ' गगन मिला सकता
तेरी कविता में वह बल जो
सागर में आग लगा सकता
तुम मोम बना सकते क्षण में
ही हो कठोर, पाषाणों को
जागृत कर सकते पल में ही
तुम जीवन के अरमानों को।

ये बातें इन पंक्तियों के कवि और उनकी 'जीवित कविता' प्रो. सतीश कुमार राय पर भी लागू होती हैं!

–सहायक प्राध्यापक,
विश्वविद्यालय हिंदी विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर।